भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-1, अंक-3	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
शुक्रवार, 12 जुलाई' 77	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

शुभाषिश.....

स्वामिश्रीजी

वल्लभविद्यानगर
ता. 14.7.77

प.भ. मुकुंदजीवन,

आप द्वारा भेजी हुई पत्रिका मिली, पढ़ कर अत्यंत संतोष हुआ कि प.पू. बापा का (योगीजी महाराज का) कार्य संतों द्वारा पूर्णशक्ति से हो रहा है। हमारा गुणातीतज्ञान गुजराती भाषा में तो ठीक-ठीक प्रमाण में है और हरिभक्तों भी प्रायः गुजराती बोलने वाले ही हैं। किन्तु गुजरात से बाहर अन्य भाषाभाषी प्रदेशों में इस ज्ञान का प्रसार नहिवत् था–नहिवत् है। अब प.पू. काका और प.पू. हरिप्रसादजी जैसे संतों द्वारा यह व्यापकस्वरूप ले रहा है यह जानकर अत्यन्त आनंद हुआ है। हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में गुणातीतज्ञान अभिव्यंजित करने वाली पत्रिका की आवश्यकता थी ही और अब यह कार्य सम्पन्न हो रहा है। यह एक महान हर्ष का विषय है। प.पू. बापा के ज्ञान का प्रसार पूरे राष्ट्र में और विदेशों में उनके उत्तराधिकारिओं द्वारा हो ऐसी मेरी पूर्ण मन से प्रार्थना है।

.....वहां की सारी मंडली को मेरे जय श्री स्वामिनारायण कहना।

आपका ही–
पप्पा के
जय श्री स्वामिनारायण

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

लोज में आगमन

संवत् 1856 की श्रावण कृष्ण षष्ठी के दिन नीलकंठवर्णी ने सौराष्ट्र के मांगरोल शहर के निकटवर्ती लोज नामक गांव में प्रवेश किया।

लोज उद्धवावतार सद्गुरु रामानंद स्वामी का प्रमुख स्थान था। इन्हों ने श्रीरंगक्षेत्र में श्री रामानुजाचार्य जी से स्वप्न में वैष्णव दीक्षा ग्रहण की थी। बाद में सद्गुरु के आदेशानुसार पश्चिम प्रान्त में सौराष्ट्र में भागवतधर्म की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। जब नीलकंठ ब्रह्मचारी लोज आये तब रामानंदस्वामिजी कच्छ-सौराष्ट्र में विचरण कर रहे थे। सद्गुरु मुक्तानंद स्वामिजी और अन्य शिष्य लोज में ही थे। सद्. रामानंदस्वामी समर्थ योगी और कृष्णभक्त थे। अपनी योगशक्ति से उनको ज्ञात हो गया था की परब्रह्म पुरुषोत्तमनारायण का प्रादुर्भाव पृथ्वी पर हो चुका है और वे निश्चय ही यहीं पश्चिम प्रान्त में आनेवाले हैं। अपने शिष्यों को वे कहते थे की मैं तो डमरु बजानेवाला हूँ, असली वेशभूषा धारण करनेवाला तो अभी आनेवाला है।

नीलकंठवर्णी तो लोज में एक वाव की मुंडेरी पर बैठे थे। वहां इनको सद्. मुक्तानंदस्वामी की मंडली के एक साधु सुखानंदस्वामी ने देख लिये और दर्शनमात्र से ही उनके अन्तर में अनिर्वचनीय प्रेमभाव प्रादुर्भूत हुआ।

इन्होंने नीलकंठ को पूछा-'आप कहां से आये, कहाँ जाना है, आप के मातापिता कौन है?'

ब्रह्मचारी नीलकंठ ने उत्तर दिया-'ब्रह्मपुर से आया हूं, ब्रह्मपुर जाना है और जो वहाँ ले जावे वे सच्चे माता-पिता है।'

इस उत्तर से सुखानंदस्वामी को पूर्ण प्रसन्नता हुई और सद्. मुक्तानंदस्वामिजी के साथ मिलन करवाया। सद्. मुक्तानंदस्वामिजी भी इन के दिव्य व्यक्तित्व से प्रभान्वित हुए। नीलकंठ ने जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, परब्रह्म के बारे में और दार्शनिक विषयों के बारे में प्रश्न पूछे। सद्. मुक्तानंदस्वामीजी ने इनके यथार्थ उत्तर दिये और इनके स्वरुप के बारे में स्पष्टता की। इनके अतिरिक्त इन्होंने मुक्तानंदस्वामिजी की साधुता और भक्ति का भी दर्शन किया। परिणामरूप दोनों के बीच अटूट स्नेह बंधन हो गया। नीलकंठवर्णी तो शीघ्र ही रामानंदस्वामिजी के दर्शन चाहते थे किन्तु वे विचरण में थे। अब जब तक दर्शन न हो तब तक सद् मुक्तानंदस्वामिजी के सहवास में रहना स्वीकार किया। इस प्रकार नीलकंठ ब्रह्मचारी ने सतत सात वर्ष के अधिक समय विचरण करने के बाद पहली बार ग्रामवास स्वीकृत किया।

नीलकंठ की महिमा

नीलकंठ के अन्तर में तो गुरु मिलन की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो रही थी। अतः उन्हों ने सद्. रामानंदस्वामिजी को भूज (कच्छ) में पत्र लिखा और उनके दर्शन की अपनी महेच्छा निवेदन करते हुए शीघ्र ही 'लोज' आने की प्रार्थना की। पत्र मिलते ही सद्. रामानंदस्वामिजी ने पत्र लेखक के महत्व को पहचान लिया और सभा चल रही थी अतः सभा को सम्बोधित कर के कहा-'जिस की इंतजार थी वह आ पहुंचे हैं।' उस समय सभा में लालजी सुथार (बढ़ई) उपस्थित थे, उन्होंने रामानंदस्वामिजी को प्रश्न किया- 'क्या आने वाले महापुरुष हमारे सम्प्रदाय के स्वामी रामदासजी जितने महान है?'

सद् रामानंदस्वामिजी ने कहा- 'इनकी तुलना में रामदासजी क्या हैं? इन से तो यह बहुत महान हैं।'

फिर लालजी ने पूछा- 'क्या मुक्तानंदस्वामी जैसे हैं?'

उत्तर था- 'इन से भी महान।'

लालजी ने फिर पूछा- 'तो आप के समकक्ष हैं?'

तब स्वामी ने कहा- 'हम भी इनकी तुलना में नहीं आते है। हम से तो वे बहुत महान हैं।'

लालजी असमंजस में पड़े। वर्षों के बाद इन को निश्चय हुआ था की रामानंदस्वामिजी की बात सर्वथा सत्य थी।

तब उन्होंने कहा था- 'आज यह बात समझ में आई।'

वह लालजी कोई अन्य नहीं थे। वे थे स्वामी निष्कुलानंदजी- जिन्हों ने अमर काव्य पंक्तियां लिखी हे-

'त्याग न टकेरे वैराग्य बिना।'

अद्वितीय गुरु-अद्वितीय शिष्य

इस प्रकार सद्. रामानंदस्वामिजी को स्पष्ट था कि आध्यात्मिक दृष्टि से वे नीलकंठवर्णी से न्यून हैं, किन्तु गुरु के रूप में अपने धर्म का भी पालन करना था।

अतः इन्होंने आज्ञापत्र लिखवाया कि 'यदि सत्संग की चाहना हो तो खंभे को आलिंगन देकर रहना। और जब तक मैं लोज न आऊं तब तक वहीं गुरु मुक्तानंदस्वामिजी की आज्ञा में रहिए।'

स्वयं पूर्ण पुरषोत्तमनारायण थे, किन्तु इस पत्र को प्राप्त कर नीलकंठवर्णी ने गुरु की आज्ञा शिरसा मान्य रखी। यह है धर्म का अनुशासन साधक के लिए ! जो साधक अध्यात्ममार्ग में प्रगति करना चाहता है-अपने अंतरात्मा में परमात्मा का दर्शन करना चाहता है उसके लिए अनुशासन है कि जिन को परब्रह्म की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई है ऐसे गुरु के वचन में तनिक भी संशय नहीं रखते हुए 'यदि रात कहे तो रात और दिन कहे दिन' ऐसी श्रद्धा गुरुवचन में रख कर इनकी आज्ञा में सर्वथा रहना है। संस्कृत में लिखा है-'शासितुम् योग्यः सः शिष्यः'-अर्थात् जिस के उत्कर्ष के लिए जिस पर गुरु का शासनाधिकार है वह शिष्य है। नीलकंठवर्णी ने गुरु की आज्ञा का पालन कर के अपना शिष्यत्व सार्थक कर दिखाया। डमरू बजाने वाला गुरु और वेषभूषा धारण करने वाला नट-शिष्य दोनों अनादि के। गुरु भी अद्वितीय, शिष्य भी अद्वितीय और दोनों की अक्षरधाम की कला भी अद्वितीय ! दिव्य संकेत के अनुसार कुशल गणितज्ञ की समान सुनिश्चित प्रसंगों की रचना होती रही।

अष्टांग ब्रह्मचर्य और स्त्रीपुरुष मर्यादा

नीलकंठवर्णी 'लोज' में सरजुदास नाम धारण करके लौकिक दृष्टि से सद्. मुक्तानंदस्वामिजी की आज्ञा में

सेवक के रूप में रहे, किन्तु अक्षरधाम की रीति, नीति और स्थिति प्रवर्तित करने के लिए जब मौका मिला तब इसका त्वरित लाभ इन्होंने लिया। उस समय स्त्री-पुरुषों की सभा संयुक्त हुआ करती थी। नीलकंठ की सूक्ष्मदृष्टि को लगा कि अग्नि और घृत को पास-पास रखना ठीक नहीं। व्यक्ति कितना भी शुद्ध हो, वह (Subject) विषय (Object) की पास आये तो अष्टांग ब्रह्मचर्य के पालन में स्खलन की संभावना है। स्वामी शिवानंदजी के शब्दों में- 'पूर्ण ज्ञानिओं को और पूर्ण योगिओं को भी सर्वथा सर्तक रहना चाहिए। मीन का मैथुन देखकर भी एक समर्थ ऋषि उत्तेजित हो गए थे। स्त्रियों के कंगन के खनकार, इनकी साड़ी की किनार और रंग इन सब से भी कभी-कभी मन में भयंकर विकृति उत्पन्न हो सकती है। मोह की दुर्जय शक्ति होती है। साधकों ! सावधान रहिए।' आग की साथ खेल करो और बच जाओ वह ठीक है किन्तु आग के पास ही नहीं जाना बेहतर है। खेल-खेल में आग भड़क सकती है। विशेष कर त्यागी पुरुष के लिए तो स्त्री दर्शन और त्यागी स्त्री के लिए पुरुष दर्शन न हो इस बात को धर्म का अनुशासन ही बनाया जाना चाहिए। दर्शन, ध्यान, संग, काम, क्रोध, समोह, स्मृति-विमुख और बुद्धि नाश यह अवनति की सीढ़ी है जो व्यक्ति एक डग उतरता है वह उतरता ही रहता है। अतः सीढ़ी ही हटा लेनी चाहिए। अवनति के सोपानमार्ग का प्रथम डग दर्शन ही न होना चाहिए। अतः स्त्री-पुरुष की सभा का आयोजन इस प्रकार हो कि स्त्रियां जहां हो वहां साधु संतों की दृष्टि ही न हो सके। दर्शन ही न हो-कुतूहल ही न हो तो अष्टांग ब्रह्मचर्य स्वाभाविक हो जायेगा। ब्रह्मचर्य अध्यात्मजीवन की नींव है। ब्रह्मचर्य शरीर-मन-वाणी इत्यादि से यदि हो तब व्यक्ति का मन इन्द्रियों की ओर नहीं जायेगा तो इन्द्रियां-मन, सब का निवेदन परमात्मा को होगा। यह ही आध्यात्मिक उन्नति का पथ है। नीलकंठ ने धर्म की रक्षा के लिए एक मर्यादा अंकित की। परिणाम रूप स्वच्छंद जीवन और स्वैरविहार पर अंकुश आ गया। स्वामिनारायण संप्रदाय की यह एक उत्कृष्ट परम्परा हो गई। आज भी कथाकार पुरुषों की बीच होता है। मंदिरों में भी स्त्री-पुरुष के प्रवेश द्वार अलग-अलग होते हैं। किन्तु, प्रारम्भ में इसका विरोध हुआ था। सद्. मुक्तानंदस्वामिजी ने भी इस बात को वैराग्य की अतिशयता कह कर इसकी मजाक उड़ाई थी। हरबाई और वालबाई जो प्रथम सद्. आत्मानंदस्वामिजी की शिष्याएं थी और बाद में सद्. रामानंदस्वामिजी के पास आई थी इन्होंने भी असंमति प्रदर्शित की थी और अपने सिद्धत्व के मिथ्याभिमान में इस मर्यादा में रहना अस्वीकार किया था। अतः स्वामिनारायण भगवान (नीलकंठ ब्रह्मचारी) ने इनको सत्संग से दूर कर दी थी।

वास्तव में स्त्री-पुरुष मर्यादा धर्मशास्त्र संमत है। इस में ही धर्म की रक्षा है। इस मर्यादा में रह कर संयम आचरण किया जा सकता है। चारों ओर से दुर्ग नहीं बांधेंगे तो संयम का पालन करना दुष्कर है। इस मर्यादा पालन से एक अन्य लाभ भी हुआ। इससे स्त्रियों में सहज ज्ञान प्रचार हुआ। स्त्रियों को अपना निजी क्षेत्र अपने आप संभालना था। अतः निरक्षरता संपूर्णतया नष्ट हुई और स्त्रियों को अपनी उन्नति की निश्चित दिशा और गति प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप स्त्री समाज का उत्कर्ष हुआ।

नीलकंठ उस समय किशोरावस्था से यौवन में पदार्पण कर रहे थे। उन्होंने यह प्रारंभिक और महत्वपूर्ण सुधार के अतिरिक्त आश्रमवासियों का जीवन उत्कृष्ट और निष्कंटक करने के लिए छोटे मोटे अनेक सुधार किए परिणामस्वरूप इन बड़ी आयु के साधुओं पर भी इनका प्रभाव पड़ा और इनको निश्चय हुआ ही हम महान विभूति के सहवास में है और वे निःशंक बनकर उनकी आज्ञा का पालन करने लगे। इन को निश्चय हो गया था कि नीलकंठ की नीति-रीति के अनुसरण में ही उनका परमहित है।

वास्तव में यह प्रसंग नीलकंठ और साधुओं-दोनों की महत्ता का उज्ज्वल दृष्टांत है।

सद्. रामानंदस्वामिजी से मिलाप

इतने में सद्. रामानंदस्वामिजी गिरनार पर्वत के निकट के 'पिपलाणा' गांव में आ पहुंचे। इन्होंने शीघ्र ही नीलकंठवर्णी और मुक्तानंदस्वामिजी को संतमंडली के साथ अपने पास पिपलाणा आने के लिए पत्र भेजा। बहुत दिन से चला आ रहा संकल्प सिद्ध हुआ। पत्र लाने वाले कुरजी दवे को इस आनंद दायक समाचार लाने के लिये सबने धन्यवाद दिया और प्रत्येक सन्त ने दवेजी को कुछ न कुछ भेंटस्वरूप दिया। नीलकंठवर्णी के पास कुछ न था। इन्होंने दवेजी को अपने पास बुलाकर कहा-'हम आपको अक्षरधाम भेंटस्वरूप में देंगे।' कुरजी दवे तो

कुछ नहीं समझे। सोचते ही रहे यह अक्षरधाम क्या होगा? और वह वापस गये। इसके बाद नीलकंठवर्णी ने मुक्तानंदस्वामी और संतों की साथ पिपलाणा की ओर प्रस्थान किया। अभी तक रामानंदस्वामी कहते थे-'मैं सात मंजिल के महल बनाने के लिए दो तीन ईंट ही इकट्ठी की है। महल बनाने वाला तो अब आयेगा। यह महल बनाने वाला पिपलाणा के नरसिंह महेता के घर उनके सामने ही जब आ कर खड़े हो गये तब रामानंदस्वामिजी को अतीव हर्ष हुआ, परम प्रसन्नता इनके दिल में छा गई। गुर का कर्त्तव्य निभाना था, अतः रामानंदस्वामिजी ने नीलकंठ ब्रह्मचारी को संवत् 1857 की कार्तिक शुक्ला एकादशी एवं बुधवार और तदनुसार सन् 1800 के अक्तूबर की 29 तारीख के दिन भागवती महादीक्षा दी और उनको स्वामी सहजानंद नामक नया शुभनाम दिया।'

'छपैया' और 'अयोध्या' के **घनश्याम** वन में **नीलकंठ** थे, 'लोज' में आकर **सरजुदास** नाम धारण किया और अब रामानंदस्वामी ने उन्हें भागवती दीक्षा दी तब वे **सहजानंदस्वामी** के रूप में प्रख्यात हुए।

—क्रमशः

★ ★ ★

रक्षाबन्धन

अगस्त मासकी 28 तारीख-रविवार का दिन श्रावणी पूर्णिमा का दिन है। यह दिन हम रक्षाबन्धन के रूप में मनाते आये हैं। भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यत्मिक इतिहास में राखी के यह पर्व का विशेष महत्व है।इस महान मांगल्यपर्व को सार्थक करने के लिए महाप्रभु श्री स्वामिनारायण ने इस पृथ्वी पर अवतरण किया और ..... इन्होंने अपने आश्रितों की जिम्मेदारी अपने सर पर ले ली।

– दुर्भाग्य सौभाग्य में पलटे,

– रंक राजा बने और

– काल कर्म और माया से अपने आश्रित गण की रक्षा हो

– ये इन्होंने आशीर्वाद दिये और इस हेतु एक सरल, सुगम, स्पष्ट सुन्दर मार्गदर्शन भी किया।

हम इस पर्व के दिन क्या करेंगे? आईये, इस पवित्र मंगलपर्व दिन हम भक्तजन मिल कर प्रह्लाद जी की तरह रक्षा के लिए प्रभु से प्रार्थना करें। प्रह्लाद जी ने प्रभु से प्रार्थना की थी कि–

'हे भगवान्, मेरे शरीर की जो आपने रक्षा की है उस को ही मैं रक्षा नहीं समझता; आप मेरे इन्द्रियां-अंतःकरण के गण एवं देवताओं (कामदेव इत्यादि) से मेरी रक्षा कीजिए।'

इसी तरह हम भी महाप्रभु से प्रार्थना कर के यह याचना करें, हे प्रभो–

(1) संसार के सुख-दुःखरूप आप के परीक्षण में-आपकी कसनी में भी हम आपका आश्रय न छोड़े, हम आपके शरण में ही रहें। आप और आपके सन्तगण एवं हरिभक्तों से हमारा मन उदासीन न हो, हमारे मन आप से अलग न हो। आप के प्रति हमें मनुष्यभाव-मायिकभाव न आये, निर्दोषभाव-दिव्यभाव अविरत रहें। ऐसा सुन्दर योग और सत्संग हम खो न बैठें। ऐसी प्राप्ति होने के बाद हम शोक में न रहें। क्रोध, कपट, प्रपंच, छलना, से हम दूर रहें। हम निजानंद में रहें। सत्संग में हम टिक सकें ऐसीआप की कृपा निरन्तर हो।

(2) हमारे सच्चे रिश्तेदार आपके सम्बन्धी संत एवं हरिभक्त ही है ऐसी हमारी सन्मति निरन्तर हो और इन में हमारी आत्मबुद्धि और प्रीति स्थिर हो। उनकी सेवा वचनामृत गढ्डा मध्य प्रकरण के 41 के अनुसार* हम से होती रहे। ऐसी सुबुद्धि शाश्वत रहे यही आशीर्वचन हमें प्राप्त हो।

(3) संसार के चित्रविचित्र प्रसंगों में हम भयभीत न हो, हमें उद्वेग न रहें। हम उलझन में न फसें, हम व्याकुल न रहें. हम चिंताग्रस्त न हो, हम शोकान्वित न रहें। किन्तु छोटे-मोटे इन सब प्रसंगों के प्रेरक-प्रवर्तक आप ही है ऐसा हम सुनिश्चितरूप से स्वीकार कर सकें ऐसी श्रद्धा हम में निरंतर रहें। '**सब के प्रेरक-प्रवर्तक-कर्ता आप ही हैं**'-यह हमारे विश्वास में जो त्रुटि हो उसे हम महसूस करें-स्वीकार करें और इस त्रुटि को टालने के लिए आप

---

* भगवान या भगवान के भक्तों की सेवा करने का मौका प्राप्त हो तो इसे हमें अपना परम सौभाग्य मान के करनी चाहिए और यह भी भगवान की प्रसन्नता के लिए एवं स्वकल्याणार्थ परमभक्ति से करनी चाहिए किन्तु किसी की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए नहीं।

ही का हम भजन करें ऐसा हमें बल मिले।

(4) रात्रि एवं दिवस–पूरे चौबीस घंटे-हम आपकी प्रार्थना करें, आपका स्मरण करें, एक क्षण के लिए भी आप की विस्मृति न हो। आप के भजन का कभी त्याग न करें और हमारे मन आप के स्वरूप में ही सर्वथा रममाण हो ऐसी हमारी प्रार्थना है।

(5) कभी भी हम मनस्वी न हों-हम हमारे मन की ओर ही न देखें। आप के अनुशासन में ही हमारे मन की गति हो। हे भगवन्, ऐसी सद्बुद्धि का प्रदान कीजिए की आप के वचन हम हमारे जीवन में कार्यान्वित कर सकें-चरितार्थ कर सकें।

(6) आज प्रार्थना करें कल पलट जाएं ऐसा कभी न हो यह प्रार्थना है। मन अविचल रहे ऐसी प्रार्थना रहे।

प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी (स्वामिजी) प.पू. काकाजी और प.पू. पप्पाजी जैसे प्रकट भगवत्सवरूप संतों के समक्ष हम इस प्रकार सच्चे दिल से प्रार्थना करके रक्षा मांगे। उनकी कृपा और प्रसन्नता के पात्र बन कर सच्चे सुख की प्राप्ति करें और यह रक्षाबन्धन का पर्व इस प्रकार हमारे जीवन में सार्थक हो कर रहे।

★ ★ ★

सदा दिव्य साकारस्वरूप प.पू. काकाजी की विदेश-संस्कारयात्रा

सर्वावतारी सहजानंदस्वामिजी के सर्वजन सुखकर-हितकर दिव्यसंदेश, उनकी भव्य आचारसंहिता, उनके कल्याणकारी नियम, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए उनके द्वारा दी गयी सन्तसमागम की शिक्षा तथा आत्यन्तिक कल्याण के लिए प्रकटस्वरूप का अनन्य आश्रय द्वारा मुमुक्षु की पूर्ण भगवत्निष्ठा को परिपक्व एवं सुदृढ़ कराने तथा सबको सतत सुख सम्पन्न करने के लिए केवल भगवान में रह कर हमारे सन्त देश-विदेश में विचरण करते रहते हैं और सद्भाव की सुधा से आप्लवित करते रहे हैं। परिणामस्वरूप अनन्त साधनों एवं तप-त्याग-वैराग्य आदि के द्वारा भी जिन अन्तःकरणों में वासना शेष रह जाती थी, उन्हें सहज सद्भाव से सर्वथा वासना शून्य बना दिया।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1973 से भगवत्सवरूप प.पू. स्वामिश्री, प.पू. काकाजी तथा प.पू. पप्पाजी ने कच्छ-भुज से लेकर सूरत तक के क्षेत्र में ही संकुचित स्वामिनारायण सम्प्रदाय को इस समय व्यापक बनाया... और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न युवक कार्यकर्त्ताओं को साथ लेकर प.पू. काकाजी ने स्वयं परदेश की भूमि पर विचरण किये ! प.पू. पप्पाजी ने भी इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने मानसपुत्र पू. जशभाई (पू. साहेब) पू. शान्तिभाई एवं पवित्र बहनों को भी भेजे। इस तरह इन विभूतियों ने विदेश में एक गुणातीत प्रणाली का प्रारंभ किया। इस पुनित कार्य में बहुत से लोगों ने उनका साथ दिया, सहायतायें कीं, तन-मन-धन से अपनी सेवायें समर्पित कीं। बहुत से सत्संग केन्द्रों की स्थापना की गई, कई मंदिर भी निर्मित हुए। 1970 में प.पू. योगीजीमहाराज ने आशीर्वाद दिये थे-यहां 500 अंग्रेज सेवक तथा 2000 अंग्रेज सत्संगी बनेंगे; आनंद के फव्वारे उड़ेंगे।

तो, अब यह संकल्प मूर्तस्वरूप लेगा, गुणातीतज्ञान सक्रिय और व्यापकरूप से प्रवृत्त होगा। प.पू. स्वामिश्री कहा ही करते हैं–'वैसे प्रभु का कार्य तो स्वयं प्रभु या प्रभु के स्वरूप ही सम्पन्न करेंगे। हमें तो केवल निमित्त बनकर, केवल सेवाभाव से यह महान् कार्य करना है।'

लंदन की कोरचेस्टर योग कॉलेज, अमेरिका की प्रख्यात बर्कले युनिवर्सिटी तथा बाबास कॉलेज में 'ध्यान' के आध्यात्मिक प्रयोग करा कर, भगवान स्वामिनारायण का प्रभाव समझाकर, बहुतों को प्रभु के मार्ग पर लाकर, निष्ठासम्पन्न भक्तों में संतप्रधान सत्संग करने की समझ भरकर तथा कुछ एकान्तिकों की कतिपय आशंकाओं, त्रुटियों को दूर कर प.पू. काकाजी, पू. महेन्द्रबापु तथा पू. राजुभाई ठक्कर यु.के., अमेरिका, कनाडा तथा कुवैट की 45000 मील की संस्कारयात्रा कर के 1 अगस्त को बम्बई पधारे। इस शुभावसर पर प.पू. स्वामिश्री के सान्निध्य तथा पू. गोरधनकाका की अध्यक्षता में बम्बई के तमाम भक्तगण एवं महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र, बेंगलौर, कोचीन, दिल्ली आदि के अपने केन्द्रों के बहुतेरे हरिभक्तों ने अपूर्व उमंग एवं उत्साह के साथ बिरला मातुश्री सभागृह में सम्मान समारंभ का आयोजन कर अपनी अनन्य भक्तिभावना

अर्पित की। इस अवसर पर बोलते हुए प.पू. काका ने लंदन में पू. शारदाबहन (आण्टी) पू. बेचरकाका (बापुजी), प.भ. दामाशेठ, प.मु. वल्लभदासभाई, प.भ. सुरशेभाई, प.भ. विनुभाई नकारजा तथा अन्य युवकों ने, अमेरिका में प.भ. दिनकरभाई, प.भ. महेन्द्रभाई, प.भ. रमेशभाई, प.भ. नगीनभाई, प.मु. लोपाबहन ने तथा कुवैत में प.मु. हंसादीदी एवं प.भ. ओधवजीभाई ने जो भीडसे–एकनिष्ठा से सेवायें की थी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कीं। इस प्रसंग पर डॉ. बेंकटाचार्यजी तथा डॉ. आर.डी. पटेलसाहब ने स्पष्ट बतलाया कि इस समाजद्वारा अक्षरपुरुषोत्तम के ज्ञान का जो प्रचार हो रहा है तथा आगे भी होता रहेगा, उसके लिये अध्यात्मजगत सर्वथा ऋणी रहेगा।

अंत में प.पू. काकाजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि–'आप सब ने हमारा सत्कार-सन्मान किया ये आपकी भक्ति का एक प्रतीक अवश्य है, किन्तु मेरी एक अपेक्षा यह है कि जब प.पू. योगीजी महाराज की–सनातन ब्रह्म की सत्ता देश-विदेश में सर्वत्र कार्य कर ही रही है, तब किसी भी प्रकार की खींचातानी किये बिना प.पू. योगीजी महाराज से संबद्ध हम सब एक बनकर, दिव्यसंत से संबंध सबको दिव्य मानकर, इनके संकल्प को मूर्त करें।'

प.पू. स्वामिश्री ने भी इसी सुहृद्भाव पर बल दिया ! हमें चाहिए कि इस रहस्य को हम जानें, समझें तथा जीवन में उतारें।

★ ★ ★

Unique and Unparallel Boons

The boons given to humanity by Mul-Akshar-Murti Gunatitanand Swamiji are in two aspects.

(1) As per Vachanamrit vartal-19, the manifestation of the Eternal Divinity in personified divine form will be ever remaining constant and continuous on this earth-particularly in Bharat Varsha. To know, understand, recognise and accept fully such Gunatit Saint coming from the original disciplic succession-Suddha Guruparampara is the pre-requisitte inevitable condition for a Bhakta or an aspirant. When one has actually recognised and accepted this eternal truth of Divine manifestation in humanly personified form thro' a real Sadguru, all his desires – akankshas will be fulfilled. However, at a later stage he will have that discrimination – Vivek of not demanding-asking for trifling things of the world when God has bestowed infinite favour by His grace, compassion, love and charity to fulfill the best in him for the realization as a Brahmaroopa for constant and continuous permanent communion with Parabrahman as per Shloka-116 of Shikshapatri. Shri Aurobindo also advocated not to impose one's mind and vital will on the Divine but to receive the Divine's will and follow it without any thought or doubt-but so lovingly and willingly with implicit fait-trust and understaning that it is for his own good. Rather one must thank almighty God for His placing him in the company of such a supremely realized Brahmaswroop Saint.

(2) The second acpect which He has clearly put forward as the most fundfamantal inevitable condition or law or niyama through His 200 young Sadhakas like Niranjanand Swami and others is to hold the realized Brahmaswaroop Saint as supremely divine in all His actions and moments – in His preachings and commands. One should have a firm conviction that the ways of the Master are not like those of the human mind and it is impossible to judge them or to lay down for Him what He shall or shall not do, for He knows better than we know. There should not be an iota of dobut or inquiry whether this is right or wrong – good or bad-proper or improper. The mind has to transcand even deliberately to accept His verdict – His sayings – His ajnyas as eternally true for us. Then one becomes automatically – at the very moment 'Nirvasnik.' This cannot be attained by all tapasyas, penances, rigorous disciplines, meditation, prayer, ashtanga yoga or Sankhya-Vichar and all such human efforts which have been practised for the last 30,000 years. While, here Lord's presence will always be there through a real Sadguru particularly in our country, but being in humanly form one has to recognize Him – see Him and look at Him with inward eye, when there will be instantaneous revelation, mental peace and even Samadhi as

mentioned in Vartal – 14-10-19 and 11. The only vigilance to be kept by the Sadhaka is to avoid even slightest manushyabhava and mayikbhava in such divinely manifested personal form-Swaroops. Whether he is a new comer or old, but this sort of understanding and vision has to be firmly established in the inner most part of his heart. The heart-trip must start and not the mental trip. Mental trip has to be entirely stopped. Then is an entry into the Brahmic consciousness and his spiritual relationship with the Master starts. By such Sadbhava towards such Vibhuties a lusty like the prostitute of Jetalpur becomes purified. i.e.a. kami becomes nishkami, a decoit turns into a pious saint!

This is the greatest contibution given by Akshar Brahman making the Jiva purfied for imbibing the divine power and becoming Brahmaroopa, which can never be done by Sadhans or Sadhanas. This is the distinguishing feature of Gunatit gnan, where the whole process of spiritual dvelopment has turned upside down by the entry of this feature of Akshar-Brahman. The indomitable faith in Akshar-Brahman thus becomes and will always remain a permanent feature. This, however has been a remarkable and radical demarcation from the traditional spiritual techniques and methods. It has totally changed the process by making dynamic revolution whereby Jiva is uplifted, purified and becomes Brahmaswaroop. Some religious and Samparadyas advocating traditional methods may not accept this revolutionary phenomenon, but it is so empirical, rational, philosophical and eternal that no one can even doubt its vailidity or nullify it.

These two aspects of the Sadhana entirely done actually by Sadhya or by real Sadguru himself for us will ultimately lead to final stage, final destination i.e. Akshar Dham on this very earth. The kingdom of heaven is within as per Jesus, but it is also without as given as a boon freely by Akshar-Brahman Gunatitanand Swami.

Let us compliment Brahmaswaroop Shastriji Maharaj and Yogiji Maharaj to make this feature and phenomenon common for all. This most difficult and ardeous task was fulfilled and completely established by Shastriji Maharaj in building the new temples with the idols of two Eternal Entities viz. Akshara and Purushottam Atman and Paramatman – Brahman and Parabrahman or Swami and Narayana. One can have this sort of Darshana at Gondal near Rajkot-Saurashtra and at various other temples established by Shastriji Maharaj and Yogiji Maharaj, who will be remembered for ever for making the supramental realization within the reach of even the most common man.

These are the boons and gifts given to all human beings for their perfection and prosperity, peace and power and for the highest understanding of Akshar Dham on this earth open for all without any distinction for Sadhana. It is like the sun permeating light for all. At present also such saints and Jivanmuktas are working by the grace of Shastriji Maharaj and by the Sankalpa of Yogiji Maharaj at Sokhada Sankarda, Bombay, Delhi, Vallabhvidyanagar and at such other places and centers where this principle or doctrine of total vision of Aksharpurushottam unity is followed. Then why not start ourselves just now? It is upto us to accept and follow with open mind and loving heart!

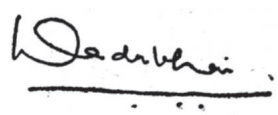

भक्तों से निवेदन

आप के उदार संरक्षण के फलस्वरूप आपकी पत्रिका 'भगवत्कृपा' 'The Divine Grace' अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगी। अतः आप से प्रार्थना है कि आप 1977 का वार्षिक शुल्क 10.00 रुपये प्रकाशन कार्यालय पर शीघ्र भेजने की कृपा करें तथा अन्य सज्जनों को भी इस पत्रिका के ग्राहक बनाकर इस धार्मिक संस्थान की प्रगति में अपना योगदान दें। कृपया अपने पत्रों पर, मनीआर्डर कूपन पर पूरा नाम व स्पष्ट पता अवश्य लिखें।

पत्रिका की गौरवान्वित स्थिति के निर्माण में हमें आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा, इस विश्वास के साथ।

–सहसम्पादक

प्रेम

- ❖ शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम से अधिक सुखी बनानेवाली दूसरी कोई चीज़ नहीं है।
- ❖ प्रेम का अर्थ लैंगिक संबंध नहीं है।
- ❖ प्रेम का अर्थ प्राण का आकर्षण और लेन-देन नहीं है।
- ❖ प्रेम का अर्थ स्नेह-प्यार पाने के लिए हृदय की भूख नहीं है।
- ❖ प्रेम तो एक शक्तिशाली स्पंदन है जो सीधा भगवान से पैदा होता है और केवल अत्यंत शुद्ध एवं अत्यंत सबल व्यक्ति ही इसे ग्रहण और व्यक्त कर सकते हैं।
- ❖ शुद्ध होने का अर्थ है केवल परमदेव के प्रभाव की ओर खुले होना और किसी के प्रति नहीं।
- ❖ प्रेम करने का अर्थ अधिकार करना नहीं है, प्रेम अपने-आपको देना है।
- ❖ जब तक व्यक्ति में अहंभाव रहता है, वह प्रेम नहीं कर सकता।
- ❖ प्रेम ही अहंभाव पर विजय प्राप्त कर सकता है।

श्री माताजी
(श्री अरविंद आश्रम-पांडिचेरी)

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	14.8.77	रविवार	अमावस्या, पुरुषोत्तममास समाप्ति
2.	दि.	15.8.77	सोमवार	भारत स्वातंत्र्यदिन
3.	दि.	19.8.77	शुक्रवार	नागपंचमी, पू. कृष्णजी अदा का प्राकट्यदिन, जन्म सं. 1890
4.	दि.	23.8.77	मंगलवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
5.	दि.	25.8.77	गुरुवार	पुत्रदा एकादशी
6.	दि.	28.8.77	रविवार	पूर्णमासी, रक्षाबन्धन
7.	दि.	1.9.77	गुरुवार	प.पू. पप्पाजी का प्राकट्य दिन
8.	दि.	5.9.77	सोमवार	श्री कृष्ण जन्मोत्सव
9.	दि.	9.9.77	शुक्रवार	अजा एकादशी
10.	दि.	12.9.77	सोमवार	सोमवती अमावस्या

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 518838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110077